P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-4*(Part-2) December- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

हिन्दी के समकालीन महिला उपन्यासों में स्त्री–दमन के विभिन्न रूप

मुक्तिनाथ यादव
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
पं0 ल0मो0श0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ऋषिकेश, उत्तराखण्ड, भारत

सारांश

प्रायः महिला उपन्यासकार से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी रचना में पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के स्थापित मूल्यों और मान्यताओं को न केवल चुनौती दे, अपितु उनको उलट–पुलट कर रख दे। जरूरी नहीं कि हर महिला उपन्यासकार ऐसा कर पाती हों । वे अपनी रचनाओं में पुरुष के दमनकारी रूप की पहचान कर पाती हैं, स्त्री विमर्श के संदर्भ में उनकी यही उपलब्धि होती है। मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, कृष्णा सोबती, गीतांजलि श्री, ममता कालिया, जया जादवानी आदि समकालीन महिला उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री–दमन के विभिन्न रूपों को चिन्हित करने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों में पितृ सत्तात्मक सामाजिक संरचना वाले समाज में पुरूषों द्वारा देह व्यापार, कोख व्यापार, बलात्कार, उपेक्षा, नाजायज संबन्ध, भय, दहशत, आतंक, कार्य स्थल पर शोषण, सामाजिक निष्कासन, संदेह की दृष्टि, संवेदनहीनता आदि शोषण तथा दमनकारी रूपों को चित्रित किया गया है।

मुख्य शब्दः पितृसत्तात्मक, लिंग–भेद, स्त्री–विमर्श, दमन, सशक्तीकरण, पुरूष–वर्चस्व, अमानवीयता, संवेदनहीनता, शोषण, उत्पीड़न, उपभोक्ता संस्कृति, आत्मनिर्भरता।

प्रस्तावना

पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने औरत को लेकर ऐसी तर्क व्यवस्थाएं निर्मित की हैं, जिससे सामाजिक संरचना में पुरुष का वर्चस्व सदियों से कायम है। इस व्यवस्था में स्त्री के लिए कुछ मानक तय किए गए हैं जिनका पालन करने पर उसको सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और विरोध करने पर अपमान के योग्य, हेय और तुच्छ समझा जाता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में अच्छी स्त्री वह है जिसकी अपनी जुबान नहीं है। वह पुरुष से प्रतिवाद नहीं करती है। उसका स्वभाव अंतर्मुखी है। वह खामोश रहने वाली, संयमी, मर्यादाप्रिय और संस्कारवान है। उसे समर्पणशील तथा आज्ञाकारिणी होना चाहिए। वह प्रतिरोधहीन और प्रतिक्रियाहीन है। उसे अपनी इच्छाओं, कल्पनाओं तथा आकांक्षाओं को खुलकर व्यक्त नहीं करना चाहिए। वह नैतिकता, शील, मातृत्व का निर्वाह करती है और अपनी पवित्रता को हर मौके पर प्रमाणित करती है। लज्जा और सहनशीलता ही उसका आभूषण है। स्त्री के लिए ये सारे प्रतिमान पितृसत्तात्मक हैं। ये सब पितृक अनुशासन हैं। जो स्त्री इन प्रतिमानों को पूरी निष्ठा के साथ आत्मसात करती हुई पीढ़ी–दर–पीढ़ी उसे आगे बढ़ाती हुई निरंतर जारी रखती है, वह उच्च गुणों से महिमामंडित होती है और आदर्श नारी कहलाती है। जो स्त्री इन प्रतिमानों पर खरी नहीं उतरती वह कुलटा, चरित्रहीन, संस्कारहीन, मर्यादाहीन, अनैतिक, अभद्र आदि अलंकारों से अलंकृत होती है। वह हिंसा, अमानवीय यातनाओं, यंत्रणाओं, संताप, दमन और उत्पीड़न झेलने के लिए अभिशप्त हो जाती है। आज की जागरूक, प्रबुद्ध और तर्कशील स्त्रियां पितृ–सत्ता के इस दमनकारी रूप की पहचान कर रही हैं। उनका मर्मस्पर्शी तथा वास्तविक चित्र अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत कर रही हैं, जो स्त्री–विमर्श का केन्द्रीय बिन्दु है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं के ऊपर होने वाले अत्याचारों के विभन्न रूपों की पहचान करना है। स्त्री के साथ होने वाले दमनकारी रूपों का क्रूर निसंगता के साथ चित्रण करना, दमन के फलस्वरूप स्त्रियों में क्रोध, चिन्ता, यातना, दुःस्वप्न, भय, पापबोध, आत्महत्या आदि परिणतियों को रूपायित करना, ग्रामीण इलाकों में लिंग, वर्ण, वर्गभेद आधारित शोषण का विश्लेषण, विवेचन करना इस अध्ययन के उद्देश्य में समाहित है।

साहित्यावलोकन

मजदूरों की बेबसी का बेबाक चित्रण मैत्रेयी पुष्पा ने *इदन्नमम* में किया है। शारीरिक शोषण की शिकार तुलसी का यह कथन देखने योग्य है–"अरे हमारी तो बेबसी है ठेकेदार , हमें के लाने दिन में ही पथरा नहीं तोड़ने पड़त , रात को देह भी ... हमें बिना रौंदे–चीथे तुम्हारी बिरादरी के लोग पत्थरों से हाथ नहीं लगाने देते। बिटियां का करें, बूढ़ी मताई को, बाप को काम नहीं देता कोई ... और जनी की जात मरद बिरोबर काम नहीं कर पाती सो सहद के छत्ता की तरह निचोरत हैं मालिक लोग ...।"[1] ठेकेदारों के यहां काम करने वाली औरतों के शोषण का कोई अंत नहीं है। उनको अपने पतियों के चरित्र के बारे में सब कुछ पता होता है। फिर भी वे कुछ नहीं कर सकतीं । जगेसर की पत्नी कहती है–"आजमाये हुये का क्या आजमाना ? एक बार दिखा दिए अपने चरित्तर , सो समझ लिया हमने कि यह हमारा आदमी मालिक हितू–मीत कुछ भी नहीं। घर में रहता है। मालिकी छांटता है। कहो तो हाथ–गोड़े तोड़ता है। वह तो करेगा ही। ईसुर–भगवान ने औरत को बल में काहे कमजोर बनाया ? शराब पीकर दूना बल आ जाता है नासिया में। हम कहते हैं कि इससे तो हम रांड़ ...।"[2]

प्रायः पुरुष स्त्रियों को भय, दहशत और उपेक्षा की स्थिति में रखते हैं। स्त्रियों को अपने स्वामित्व और नियंत्रण में रखने का यह एक कारगर तरीका है। पुरुष सत्ता स्त्री को दहशत में बनाए रखना चाहती है। इसके लिए वह तरह–तरह के औजारों का इस्तेमाल करती है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास *चाक* का रंजीत अपनी पत्नी सारंग को दहशत में रखता है। उसे बार–बार परिवार से बेदखल करने की धमकी देता है। रंजीत सारंग की स्वतंत्र तबीयत से डरता है। इसलिए रीतियों, रिवाजों, मर्यादा, इज्जत, लोकाचार का बार–बार हवाला देता है, इनके पालन न होने पर सारंग को मारने की धमकी देता है। वह चौके में खाना–पीना , सारंग की छुई चीजों का त्याग कर देता है। रात में बाहर सोता है। संबन्ध–विच्छेद भी नहीं, केवल उपेक्षा करता है।फलस्वरूप सारंग को दंड मिलता रहता है।

जब कोई स्त्री परिवार की चारदीवारी को तोड़कर अपने व्यक्तित्व में कुछ जोड़ना चाहती है और समाज के लिए कुछ करना चाहती है तो वह परिवार की ही नहीं, बल्कि समाज की आंखों में भी किरकिरी बनती है। वह एक प्रकार के सामाजिक निष्कासन को झेलने के लिए विवश कर दी जाती है। उसका खुला अपमान किया जाता है। वह जगह–जगह लांछित होती है। उस पर लोगों के द्वारा ताने कसे जाते हैं। समाज उस पर फिकरे कसता है। उसे आसानी से आवारा कह दिया जाता है। प्रभा खेतान ने *छिन्नमस्ता* में प्रिया के माध्यम से एक विवाहित स्त्री की इन विडंबनापूर्ण स्थितियों का उद्घाटन किया है। परिवार वह प्रतिष्ठित खंभा है जिस पर समाज टिका हुआ है। प्रिया उस प्रतिष्ठित खंभे पर प्रहार करती है। इसलिए "शिकायतें और चारों ओर शिकायतें। प्रश्न पूछती हुई आंखें।... इस औरत को कैसे हम अपने घर बुलाएं ? कैसे सम्मान दें ? कल हमारी भी बहू–बेटियां ऐसे ही कदम उठाएंगी। गलत उदाहरण है, बिल्कुल गलत।"[3]

नारी–शोषण का एक घिनौना अस्त्र है–कोख का व्यापार । इस विडंबनापूर्ण स्थिति का उद्घाटन चित्रा मुद्गल के उपन्यास *आवां* में किया गया है। नमिता को गर्भपात हो जाता है जिसके बाद पता चलता है कि संजय को नमिता नहीं बल्कि उसकी पवित्र कोख चाहिए थी, जिससे अपने फैले हुए व्यापार–साम्राज्य के लिए वारिस मिल सके। बौखलाया संजय कहता है–"जानती हो ? बाप बनने के लिए मैंने तुम्हारे ऊपर कितना खर्च किया ? ... मुझे सिर्फ उस लड़की से औलाद चाहिए थी जो पेशेवर न हो... पवित्र हो ...सिर्फ मेरे लिए मां बने ! सिर्फ मुझसे सहवास करे।"[4] नमिता की तरह एक स्त्री पात्र गौतमी भी है, जो नामी–गिरामी उद्योगपति छेड़ा साहब को अपनी कोख से वारिस देकर उनसे भेंट में मिले आलीशान फ्लैट में रह रही है।

मैत्रेयी पुष्पा ने *चाक* उपन्यास में रंजीत के माध्यम से एक शंकालु पति का चित्रण करके पत्नी को संदेह के घेरे में फंसाते हुए यथार्थ से दूर होते जाने और क्रमशः विनाश की ओर बढ़ते हुए दिखाया है। रंजीत अपनी पत्नी सारंग के चरित्र पर शक करता है। गांव वालों की बातों पर विश्वास अधिक और पत्नी पर कम करता है। गांव के मास्टर के साथ सारंग के सहज मानवीय संबन्ध को वह शक की निगाह से देखता है।सारंग को लोकाचार का पाठ पढ़ाते हुए कहता है–"तुम! सतमंती बनने का ढोंग कब तक करोगी आखिर ? किस–किस को मूर्ख बनाओगी ? पूरे गांव की आंखों में धूल झोंक दोगी ? किसी को सपना नहीं आ रहा कि मास्टर हमारे यहां गुलछर्रे... देखा होगा तभी न कह रहा होगा मनोहर कि लोग–बाग ससुराल में मेहमानी मार रहे हैं, और मास्टरजी यहां आसनाई...हा हा हा हा ... हंस रहे थे लोग। किस ताल पोखर में गिरूं मैं ? या रोज तुम्हारी ठोका–पीटी करूं ?"[5]

कोई व्यक्ति साहित्यिक संवेदना से संपन्न होते हुए भी अपने व्यक्तिगत जीवन में संवेदनहीन हो सकता है, ममता कालिया ने *एक पत्नी के नोट्स* में पति–पत्नी संबन्धों के बेबाक चित्रण के माध्यम से इस विडंबना को उजागर किया है। यह उपन्यास भारतीय समाज में मर्दवादी सोच के खिलाफ एक स्त्री–विमर्श का उपन्यास है। ममता कालिया के *एक पत्नी के नोट्स* के संदीप को यह बुरा लगता है कि उसके साहित्यिक दोस्त उसकी पत्नी की प्रशंसा करें। वह कविता से कभी नहीं बताता है कि वह कहां जाने वाला है। वह उसकी क्रूरता झेलती , तिलमिलाती और टूटती जाती है। उसे लगता है वह एक साहित्यिक रुचि संपन्न पुरुष प्रशासक के साथ नहीं , बल्कि एक मनोरोगी के साथ रह रही है। धीरे–धीरे वह स्वीकार कर लेती है कि "उसका पति जीनियस तो है पर विकृत जीनियस।"[6]

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास *चाक* में श्रीधर मास्टर जैसे लोग यह सब देख रहे हैं और लाचार हैं। इसलिए उनको लगने लगा है कि "ये मनुष्य जाति से अलग मनुष्य हैं। अच्छा है अज्ञान में रहकर सहना सीखें। उनको ज्ञान के दर्शन कराना साजिश ही तो होगी–उन्हीं के खिलाफ।..

.औरत से पहले आदमी को ज्ञान देना होगा। उसके संस्कारों को प्रकाश की दुनिया में ले जाने का जोखिम उठाना होगा। तब शायद ये गुमशुम युवतियां निर्भय होकर हंस सकें...किसी मां को बेटी जनने के बाद तौहीन महसूस न हो।"[7]

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास *इदन्नमम* में पुलिस उत्पीड़न से बचने के लिए दर–दर भटकती , लुकती छिपती मंदा के साथ बीमार अवस्था में रिश्ते में मामा समान कैलास मास्टर द्वारा बलात्कार होता है। आश्चर्य नहीं होता कि नाबालिक लड़की मंदा के साथ बलात्कार होता है और इसकी पुलिस में कोई रपट तक दर्ज नहीं करवाई जाती।मंदा कुसुमा भाभी द्वारा समझा दी गई है कि "अपने मन में तनिक भी भय मत लाना । झिझक–हिचक में मत रहना। जो हुआ उसे भूल जाना। डर मत मानना कभी । जिन्दगानी में , इतनी बड़ी जिन्दगी में अच्छा–बुरा घट जाता है बिटिया , उसके कारन मन में गांठ लगाने से क्या फायदा ? जो तुमने किया ही नहीं , उसके लिए अपने को दोषी क्यों मानना? उस कुकरम की शगीदार, मंदा, तुम तो बिल्कुल नहीं।"[8]

बलात्कारी पुरुष बलात्कार को पौरुष की निशानी मानता है और समाज का एक बड़ा वर्ग भी उसे मौज–मस्ती कह कर टाल देता है। बलात्कारी द्वारा केवल कमजोर स्त्री को शिकार बनाया जाता है। उसका ढीला मनोबल और आसानी से सुलभ होने वाली छवि बलात्कारी को कुकृत्य के लिए प्रोत्साहित करती है। पिता–तुल्य अन्ना साहब द्वारा *आवां* की नमिता को उसके शरीर के इस्तेमाल के लिए ठीक उस समय मजबूर किया जाता है, जब उसका मनोबल कमजोर होता जा रहा है और उसे दूसरों से मदद की अपेक्षा है। अन्ना साहब के पास अपने कुकृत्य को सही साबित करने और औरत को वश में करने के अपने तरीके और तर्क हैं–"साफ कहूं तुमसे ? साफ कहने का मैं आदी हूं। देखो , दोस्त की बेटी हो तुम , बेटी नहीं हो मेरी। पिता समान हूं मैं तुम्हारे , पिता नहीं हूं। रिश्ते की इस गहन अंतर्सूक्ष्मता को महसूस कर लोगी तो संबन्ध से स्वयं को शोषित अनुभव नहीं ।"[9]

वैवाहिक जीवन में भी बलात्कार संभव होते हैं, इसको पुरुष नहीं, कोई स्त्री ही समझती है। प्रायः हर समाज में पत्नी की इच्छा–विरुद्ध पति का यौन–व्यवहार बलात्कार की श्रेणी में नहीं आता। पत्नी की लैंगिकता का उपभोग करने का पति के पास वैध अधिकार है, किन्तु इसमें पत्नी को ना कहने का मौलिक अधिकार भी शामिल है। दांपत्य जीवन में एक दूसरे की यौन आवश्यकताओं की पूर्ति होती ही है। किन्तु इसमें संतुलन जरूरी है। यह पति–पत्नी के बीच आपसी तालमेल से ही आ सकता है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास *आवां* की गौतमी अपने अनुभवों के आधार पर कहती है–"पति क्या होता है , आधिकारिक बलात्कारी !"[10] उषा प्रियंवदा के उपन्यास *अन्तर्वंशी* की वाना के लिए शिवेश को पहले दिन से ही पति रूप में ग्रहण करना यातना के समान रहा है। पत्नी के ऊपर वर्चस्व की कामना से उसकी इच्छा–विरुद्ध संभोग के लिए मजबूर करना बलात्कार ही है। क्योंकि इसमें पत्नी सहयोगी नहीं सहयोग का अभिनय करती है। मैत्रेयी पुष्पा ने *चाक* में इस स्थिति का उद्घाटन किया है–"पलिका के ऊपर लेटी सारंग अंधेरे कोठे में हमले पर हमला झेल रही है। बेबस सी, मगर अपनी सहमति दिखाते हुए। आह–कराह को होंठ भींचकर पीती हुई, लेकिन रंजीत की पीठ को कोमल हाथों से सहलाती हुई...सहयोग का अभिनय...पति ने पूरी ताकत निचोड़ दी। मर्दानगी के बोझ से कुचल डाला। अभिसार की रस्म–अदाई पूरे मन से हुई। उसे परास्त करके रंजीत खुश हैं।"[11]

कुछ बलात्कार नजदीकी रिश्तों में होता है। यहां बलात्कृत की आवाज सुनाई नहीं देती, क्योंकि उसकी आवाज प्राण जाने का कारण बन सकती है। इसलिए स्त्रियां बलात्कार के बाद चुप करा दी जाती हैं। प्रभा खेतान ने स्त्री–जीवन के इस सबसे कुरूप पक्ष को अपने उपन्यास *छिन्नमस्ता* में रूपायित किया है। उपन्यास की नायिका प्रिया जब दस वर्ष की थी तभी उसके सगे भाई द्वारा उसका बलात्कार हो जाता है। प्रिया को यह भी मालूम नहीं था कि 'भैया ने यह क्यों किया ?' प्रिया नहीं चाहती थी। मना करने पर उन्होंने ऐसे जोर का थप्पड़ मारा कि प्रिया को विरोध छोड़ देना पड़ा। इस घटना से विचलित दादी मां को रोती देखकर उसको समझ में आ गया कि उससे कोई भयंकर गलती हो गई है। उसके भीतर पापबोध पहली बार होता। प्रिया हुमक–हुमक कर रोती जा रही है और दादीमां उसको समझा रही हैं–"सुन बिटिया ! हमार कहना मान और जिन्दगी में ई सब बात कभी किसी से जिन कहियो।"[12] चित्रा मुद्गल के उपन्यास *आवां* में नाबालिग नमिता का उसके मौसा द्वारा यौन उत्पीड़न होता है। हौसला करके जब वह संकेत द्वारा अपनी मां से बताती है तब जल्लादी आंखों से तरेरती हुई उसे चेतावनी देती हुई कहती हैं–"जो हुआ उसे पेट में डाल...।"[13]

महिला उपन्यासकार अपने उपन्यासों में लिंग आधारित भेदभाव तथा स्त्री के संदर्भ में पुरुष–व्यक्तित्व के दोहरेपन का उद्घाटन कर रही हैं। वे इस क्रम में पुरुष के छद्म चेहरे को बेनकाब भी कर रही हैं। जया जादवानी के उपन्यास *तत्वमसि* की नायिका हैरान होकर देखती है कि उसका भाई नहीं पढ़ना चाहता तो भी लोग उसे जिद करके पढ़ाना चाहते हैं। वह अपने जीवन के लिए मनचाहा चुनाव नहीं कर पाती। विवाह उसके ऊपर थोप दिया जाता है। वह सोचती रह जाती है–"मै कभी कुछ नहीं चुन सकूंगी। मैंने कभी कुछ नहीं चुना–अपनी इच्छा और अनिच्छा तक नहीं। तुम चुनोगे मेरे लिए पूरा जीवन और मैं उसे जीने के लिए बाध्य होऊंगी। वही जीना होगा मुझे।"[14]

गीतांजलि श्री ने उपने उपन्यास *माई* में इस लिंग आधारित विभेदीकरण का व्यापक वर्णन किया है। सगी बहन सुनैना के लिए पढ़ाई के लिए घर से बाहर निकलने का रास्ता आसान नहीं है।उसे बाहर भेंजने की बात पर ही दादा चीख पड़ते हैं –"हमें नहीं बिगाड़ना है अपने बच्चों का भविष्य जो ऐरी–गैरी जगह भेजें। सबकी बेटियां यहीं पढ़ रही हैं, उनके दिमाग़ ख़राब हैं क्या।"[15] सुबोध समझता है इसलिए दूसरों को भी समझाना चाहता है कि सुनैना' वहां कई तरह की चीजें सीखेगी, उसका आत्मविश्वास बढ़ेगा'। इसलिए वह सुनैना को बाहर निकालने के लिए दादा, दादी, बाबू सभी से भिड़ जाता

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-4*(Part-2) December- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

है। सुनैना तो बस एक तरफ आंसू बहाती रहती है। पुरुष सत्ता की नजर में घर के बाहर औरत के लिए बस बदकारी है, इसलिए सुनैना को बाहर पढ़ने जाने से रोकने के लिए कोई कसर बाकी नहीं लगाते। उसके इस निर्णय पर बाबू रो पड़ते हैं कि शायद इसके असर से सुनैना मान जाय। वह माई को अस्त्र के रूप में इस्तेमाल करते हैं–"किसी भी तरह करो, तुम्हारी वे सुनते हैं ,ऐसा बिगाड़ दिया है कि दूसरों का तिरस्कार करते हैं, याचना करो , धमकी दो, तुम समझाओ, खानदान को सर्वनाश से बचाओ, उनके पैरों पर गिरके गिड़गिड़ाओ, मारो उसे, मां हो, हक है तुम्हारा ... वे सुनेंगे तुम्हारी..।"[16]

बचपन तक समाजीकरण की प्रक्रिया में बच्चों में लिंग आधारित भेदभाव नहीं किया जाता है। लड़का तथा लड़की अपने व्यक्तित्व में एक जैसे होते हैं। किन्तु जैसे–जेसे वे बड़े होते हैं, उनके अलग–अलग सामाजिक अनुभव अलग–अलग व्यक्तित्व का निर्माण करने में मदद करते हैं। गीतांजलि श्री ने *माई* में इस सामाजिक विसंगति का बड़े ही यथार्थपूर्ण ढंग से चित्रांकन किया है। सुनैना और सुबोध बचपन भर तो केवल 'हम' थे किन्तु जब वे बड़े हो गए तो 'हम' नहीं रह पा रहे थे। सुनैना को लगने लगा था कि "अलग–अलग सच भी हैं हमारे। कि जग के दुख–सुख, कैद–आजादी के फैले विस्तार को घेरे एक सन्नाटा है जो भले ही सबके लिए एक है लेकिन हर एक लिए उसकी अपनी अलग छटा है। और कि स्याह की एक रंगत है जो हमारी है, हम औरतों की, सुबोध की नहीं, बाबू की नहीं। उस रंग का मुझे ख़ौफ था क्योंकि उसका ताल्लुक मेरे जन्म के पहले से था। मुझसे पहले वह सन्नाटा मेरा हो चुका था।"[17] सुनैना और सुबोध के प्रति दोहरे मानदंडों पर सटीक टिप्पणी करते हुए प्रख्यात आलोचक अरविन्द जैन लिखते हैं–"माई की नैरेटर (सुनैना) और उसके भाई सुबोध के व्यक्तित्व, सोच–समझ, संवेदना और संस्कारों में गुणात्मक अंतर है। भाई–बहन के लिए समान सामाजिक नैतिकता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता कहां है ? सुबोध को रंजना, अंजना की जीजी, जूडिथ और रीतिका के साथ यौन–संबन्धों की छूट है। वह जब चाहे अपने लिए लड़की बदल सकता है। बिना विवाह किए सहजीवन का सुख भोग सकता है, लेकिन नैरेटर के ऐसे जीवन जीने पर चारों ओर से अनेक प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष दबाव आ खड़े होते हैं। वह एहसान के साथ रहे, तो सुनना पड़ता है, 'आखिर मुसलमान है' और विक्रम के साथ संबन्धों पर माई कहती है, 'हो सके तो यहां एक साथ, इस तरह मत रहा करो'।"[18]

कुछ महिला उपन्यासों के पुरुष–चित्रण में पुरुषों की मानवीय छवि उभरकर सामने आती दिखाई देती है। लेखिकाएं उनको बदलते समाज के अनुसार बदलते हुए और स्त्रियों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करते हुए चित्रित कर रही हैं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास *इदन्नमम* के पंचम सिंह उर्फ दादाजी तथा कृष्णा सोबती के उपन्यास *दिलो–दानिश* के वकील साहब कृपानारायण ऐसे ही चरित्र हैं। इन चरित्रों के सजग और सूक्ष्म विश्लेषण से पता चलता है कि वे अपने वर्गचरित्र से सर्वथा मुक्त नहीं हैं। उनके व्यक्तित्व में छद्म और दोहरापन खूब है, जो जल्दी दिखाई नहीं देता है। पंचम सिंह परिवार के मुखिया हैं। वे कथा नायिकाओं बऊ तथा मंदा को संरक्षण देते हैं। परिवार में उपेक्षित तथा कलंकित कुसुमा को भाई की वसीयत में हिस्सा देने की वकालत करते हैं। फिर भी आजीवन वे परंपरागत और रूढ़िवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था से अपनी अलग छवि स्थापित कर पाने में असफल रहते हैं। ऊपरी तौर पर वह उदार दिखाई देते हैं, किन्तु उनके सारे सिद्धांत और आदर्श केवल मुखौटा भर रह जाते हैं। मंदा से लेकर बऊ तक अपने आभ्यांतरित संस्कारों और बड़े–बुजुर्गों के प्रति श्रद्धा–भाव के कारण उसके असली चेहरे को पहचान नहीं पाते और उसके तथाकथित संरक्षण में दमन और शोषण की मार झेलते रहते हैं। दादा द्वारा बऊ और मंदा को सुरक्षा मिलने की शर्तें तय हैं। मुकदमें का खर्च बऊ ही देखेंगी। सोनपुरा में बऊ की खेती दादा का भाई गोविन्द सिंह देखेगा। जुताई, बुआई, कटाई और फसल की बिक्री इत्यादि उसी के जिम्मे रहेगा। गोविन्द सिंह बऊ और मंदा से सादे कागज पर अंगूठे लगवाकर उनकी सारी जमीन अपने नाम करवा लेता है और फिर उसे बऊ के शत्रुओं के हाथ बेच देता है। यह सब पंचम सिंह के सुरक्षा और संरक्षा के सारे आश्वासनों के बाद होता है। दादाजी के सुरक्षा संबन्धी आश्वासनों के बाद भी बऊ और मंदा पुलिस के आतंक से मुक्त नहीं होते। परिस्थितियों की मार झेल रही इन दोनों स्त्रियों को वह अपने घर में कभी सुरक्षा नहीं देते। कभी चीफ साहब के यहां, कभी औरछा के जंगल में, कभी बिरगवां गांव में घूमाते–छिपाते रहते हैं। उनके इस सुरक्षा–व्यूह में मंदा के साथ बलात्कार हो जाता है। दादाजी अपने पोते मकरंद के साथ मंदा की सगाई करवाते हैं। क्योंकि बऊ के जमीन–जायदाद की अकेली वारिस वही है। इसलिए सारी संपत्ति दादाजी के घर को मिलनी है। किन्तु मंदा के साथ हुए बलात्कार की भनक लग गई है, इसलिए सगाई टूट जाती है। दादाजी कुछ नहीं कर पाते हैं। चाहे वह लाख भूख–हड़ताल करें, मौन–व्रत धारण करें, परिवार उनकी परवाह नहीं करता। दादाजी के व्यक्तित्व पर वरिष्ट साहित्यकार और आलोचक अरविन्द जैन की टिप्पणी सटीक है–"पंचम सिंह का पूरा व्यक्तित्व दोहरा, छद्म और दिखावटी है। जो दिखाई देता है, वो दरअसल है नहीं और जो सचमुच है वो दिखाई ही नहीं देता है या समझ नहीं आता। उसकी हर योजना आदर्श, सिद्धांत और नीति का ऐसा 'शषा–जाल' ओढ़े रहती है, जो उस परिवेश में एकदम 'पारदर्शी' नहीं है। बड़प्पन, समर्थता, संत–प्रवृत्ति, वगैरह के इतने मुखौटे लगाए हुए हैं दादा ने कि कक्को उस छवि को श्रेद ही नहीं पाती और परिणामस्वरूप जीवन–भर आदर्श हिन्दू पत्नी की तरह पति–परमेश्वर की पूजा–अर्चना–वंदना में खोई रहती है। घर–परिवार, परंपरा, मर्यादा, नैतिकता और आदर की चादर ओढ़े यह जमींदार, साधन–संपन्न दंपति मूलतः अपने ही परिवार के हितों के पोषण करने और करते रहने के जंजाल में फंसे रहते हैं।"[19]

स्त्रियां पुरुषों के दोहरे चरित्र को देख रही हैं। उसके छद्म और दिखावटी चेहरे को समझ रही हैं। अपने अस्तित्व के प्रति चेतना जागृत हो जाने के बाद वे पुरुषों के बारे में अपने निर्णय भी सुनाने लगी हैं। *तत्वमसि* की

नायिका मानसी कहती है कि "बाबूजी और दादाजी को देखती हूं तो मेरे मन में पुरुषों की कोई अच्छी छवि नहीं बनती।"[20] *छिन्नमस्ता* की नायिका प्रिया कहती है कि "सच कहूं तो पुरुष की कोई भूमिका मुझे अब अपने जीवन में लगती नहीं। वह क्या दे देगा?"[21]

विश्लेषण

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास *इदन्नमम* के नारी पात्र पितृसत्तात्मक समाज द्वारा निर्धारित उन समस्त नैतिकताओं और मर्यादाओं के शिकार हैं, जो स्त्री–हितों के खिलाफ जाते हैं। वे पुरुष की यातना झेलती हैं , उपेक्षा की शिकार होती हैं, पराजित होती हैं। वे पुरुष समाज के षड़यंत्रों को पहचानती हैं, पुरुष संस्कारों से उपजे संकटों को समझती हैं और अपने दमन के विरुद्ध स्त्री शक्ति को संगठित कर प्रतिरोध भी करती हैं। पूरे उपन्यास में स्त्री की जो छवि बन रही है, उसमें वह चाहे घर के भीतर है या बाहर; हर कहीं दमन, उत्पीड़न और शोषण को झेल रही है। समाज में केवल वही स्त्री सम्मानित और सुरक्षित है जो अपने पति के वर्चस्व को चुपचाप स्वीकार कर लेती है और उनके हर सही–गलत व्यवहार को बर्दास्त करती है। पिछड़े ग्रामीण इलाकों में जब कोई स्त्री पुरुष वर्चस्व को चुनौती देती है अर्थात सशक्तीकृत होकर समाज के सम्मुख आती है तो प्रायः उसे चुड़ैल घोषित करके अमानवीय यंत्रणाओं से गुजारा जाता है और कभी–कभी उसकी हत्या भी कर दी जाती है। यह विडंबना हर गांव में किसी न किसी रूप में मौजूद है। मैत्रेयी पुष्पा ने *चाक* में स्त्री दमन के इस पक्ष को भी लिया है। गांव वाले घोषणा कर देते हैं कि मनोहर की बहू के ऊपर चुड़ैल सवार है। जब कि वस्तु स्थिति इससे भिन्न है।

दरअसल सामाजिक स्थितियां ऐसी हैं कि महिलाएं जिसमें पत्नी भी शामिल है, पुरुषों के प्रति अपना विरोध प्रकट नहीं कर पाती हैं। सदियों से पुरुष की मांग रही है कि स्त्रियां न केवल उसकी आज्ञानुवर्ती बनी रहें, बल्कि भावना और अनुभूति के स्तर पर भी वे पुरुषों के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित रहें। स्त्रियां पुरुषों की उस प्रकार गुलाम नहीं हैं जैसे अमेरिकियों द्वारा बल और निर्दयतापूर्वक काले लोगों को बनाया जाता था। बल्कि यहां पर ऐसी व्यवस्था गढ़ ली गई है कि वे स्वेच्छा से और खुशी–खुशी दासता स्वीकार कर लेती हैं। बचपन से उन्हें ऐसा प्रशिक्षण दिया जाता है कि वे न तो आत्मनिर्भर बन पाती हैं और न स्वावलंबी। सारी नैतिकता, सारे सिद्धांत यही सिखाते हैं कि दूसरों के प्रति समर्पण दूसरों पर निर्भरता, दूसरों के लिए जीना, दूसरों के प्रति त्याग, करुणा, ममता के लिए स्वयं को मिटा देना उसका पुनीत कर्तव्य है।

जेम्स स्टूअर्ट मिल ने भी कहा है कि स्त्रियों पर पुरुषों का प्रभुत्व एक दृष्टि से भिन्न किस्म का है। यह बल पर आधारित नहीं है। इसको मानने के लिए महिलाओं को विवश नहीं किया जाता। वह बिना शिकायत के स्वयं ही इस प्रभुत्व को सहर्ष स्वीकार कर लेती हैं। परिवारों में यह स्त्री–दलन का वह रूप है जो अदृश्य होता है। गीतांजलि श्री अपने उपन्यास *माई* में इसी नाम के कथा नायिका के संदर्भ में इस स्थिति को मूर्तिमान करती हैं। कहा जाता है कि शहरी मध्यवर्ग के स्त्रियों की स्थिति से गांव के स्त्रियों की दशा ठीक होती है। लेकिन मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास *चाक* इस मिथ को तोड़ता है। खुद को खुले मन की कौम मानने वाले और हर जुल्म–सितम की मारी इंसानियत को महफूज रखने का दावा करने वाले जाटों के गांव अतरपुर की स्त्रियों को देखकर ऐसा नहीं लगता। श्रीधर को इस गांव के स्त्रियों की दशा देखकर लगता है कि जानवरों के बाद अगर किसी को खूंटे से बांधा जाता है तो वे हैं आंगन लेपती, घर सहेजती, खेतों में काम करती औरतें। महिला सशक्तीकरण के नाम पर केवल शहरों में पनपते नारीवादी संगठन नारी उत्थान केन्द्र, सहेली, जागो री, नारी सहायता केन्द्र गांव के स्त्रियों की वस्तुस्थिति से अवगत नहीं हैं। वे प्रौढ़ शिक्षा या नारी शिक्षा जैसे विषयों पर व्याख्यान दे कर स्त्रियों की स्थिति में बदलाव लाना चाहते हैं। यहां गांव में बेटी का जन्म होते ही खेरापतिन दादी का व्याख्यान शुरू हो जाता है। वह चंदना की कथा याद कराने लगती हैं कि बेटी जन्मी है तो इसे खबरदार भी करती रहना कि इसको कितने, और कहां तक पांव बढ़ाने हैं। छोटी कौम से लेकर बड़ी जाति तक की औरतों की एक सी दशा है। सभी औरतों पर एक से बंधन हैं। सब औरतें एक सा कसाव महसूस करती हैं। यहां परिवार नहीं, संतान का मोह उनको जीने की हिम्मत देता है। कचहरी–कानून यहां भी हैं किन्तु वहां जाने के बारे में वे सोच भी नहीं सकतीं। यदि चली भी जाएं तो चारो ओर से हमलावर घेरने लगते हैं। यहां के लोग नेताओं –अफसरों से ज्यादा खतरनाक जीव हैं। ये वे लोग हैं जो अपनी दुनिया अंधेरी ही रखना चाहते हैं।

दुनिया भर में हर साल परिवार के परिजनों द्वारा परिवार की इज्जत के नाम पर हजारों महिलाओं की हत्या कर दी जाती है। सभ्य और पढ़े–लिखों के बीच इसे 'ऑनर किलिंग' की संज्ञा दी जाती है। लड़की जब ऐसी जीवनशैली अपना लेती है जिससे कथित तौर पर परिवार या बिरादरी की इज्जत दांव पर लग जाती है इस तरह के हिंसक कदम उठाए जाते हैं। यद्यपि अधिकांश मामले चरमपंथी पिछड़े समाजों में ही होते हैं। किन्तु इस तरह के मामले महज धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर ही नहीं होते हैं, बल्कि इसका संबन्ध समाज में पुरुषों के वर्चस्व के मामले से भी जुड़ा है।

बलात्कार एक स्त्री के खिलाफ सबसे गम्भीर अपराध ही नहीं बल्कि सर्वाधिक घृणास्पद माना जाता है। यहां तक कि कुछ स्त्रियों को बलात्कार और हत्या के बीच चयन की छूट दी जाये ,तो वे हत्या को ही चुनेगीं। दरअसल हमारे समाज की उनसे अपेक्षा भी यही होती है। यद्यपि कुछ बलात्कारियों को फांसी तक हुई है, किन्तु वर्तमान अदालती प्रक्रिया में अधिकांश बलात्कारियों के छूटने की संभावना ही अधिक रहती है। इसके लिए न्यायपालिका के पितृसत्तात्मक चरित्र का दोष है। इसलिए अब कुछ जगहों पर देखने को मिल रहा है, पीड़ित स्त्रियां स्वयं अपने हाथों से न्याय करने लगी हैं। महिलाएं बलात्कारियों का सरेआम कत्ल करने की घटनाओं को अंजाम देने लगी हैं। कुछ लोग बलात्कार को सामान्य हिंसा से अलग नहीं मानते। जिसप्रकार से कोई अपराधी

अन्य अपराध करता है , वैसे ही एक पुरुष अपराधी किसी स्त्री शरीर के साथ बलात्कार का अपराध करता है। स्त्री शरीर उसके लिए यौन आवेग शांत करने का पदार्थ–भर होती है।

निष्कर्ष

महिला उपन्यासकार महिलाओं के ऊपर होने वाले अत्याचार के प्रति पाठक की मानवीय दृष्टि को जगा रही हैं। वे स्त्री के साथ होने वाले बलात्कार को क्रूर निसंगता के साथ चित्रित कर रही हैं। स्त्री में बलात्कार से उपजे क्रोध, चिंता, यातना, दुःस्वप्न, भय और पापबोध को प्रकट कर रही हैं। उसकी सामाजिक परिणतियों को सच्चाई के साथ रूपायित कर रही हैं। कुल मिलाकर समकालीन महिला उपन्यासों के माध्यम से स्त्री की ऐसी छवि बन रही है, जिसमें वह पुरुष सत्ता की दृष्टि में दोयम दर्जे की चीज है। घर के भीतर और बाहर हर कहीं वह पुरुष–उत्पीड़न की शिकार है। धर्म, परंपरा, समाज, परिवार, मित्र किसी से भी पुरुष के समान सुविधाओं, अधिकारों तथा अवसरों की अपेक्षा करना व्यर्थ है जो भी संभावना है उसे अपने में ही तलाशनी है।

अंत टिप्पणी

1. *मैत्रेयी पुष्पा : इदन्नमम , राजकमल पेपरबैक्स , नई दिल्ली ,1994 , पृ . 241 ।*
2. *मैत्रेयी पुष्पा : इदन्नमम , राजकमल पेपरबैक्स , नई दिल्ली ,1994 पृ . 242 ।*
3. *प्रभा खेतान : छिन्नमस्ता , राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली 1993 , पृ . 200 ।*
4. *चित्रा मुद्गल : आवां , सामयिक प्रकाशन , नई दिल्ली ,1999 , पृ . 539 ।*
5. *मैत्रेयी पुष्पा : चाक , राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली , 1997 , पृ . 155 ।*
6. *ममता कालिया : एक पत्नी के नोट्स , किताबघर , नई दिल्ली , 1997 , पृ . 34 ।*
7. *मैत्रेयी पुष्पा : चाक , राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली , 1997 , पृ . 345 ।*
8. *मैत्रेयी पुष्पा : चाक , राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली , 1997 , पृ . 94 ।*
9. *चित्रा मुद्गल : आवां , सामयिक प्रकाशन , नई दिल्ली 1999 , पृ . 136 ।*
10. *चित्रा मुद्गल : आवां , सामयिक प्रकाशन , नई दिल्ली 1999 , पृ . 361 ।*
11. *मैत्रेयी पुष्पा : चाक , राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली , 1997, पृ . 226 ।*
12. *प्रभा खेतान : छिन्नमस्ता , राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली 1993 , पृ . 18*
13. *चित्रा मुद्गल : आवां , सामयिक प्रकाशन , नई दिल्ली 1999 , पृ . 303 ।*
14. *जया जादवानी : तत्वमसि , वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली 2000 , पृ . 21*
15. *गीतांजलि श्री : माई , राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली 1993 , पृ . 94 ।*
16. *गीतांजलि श्री : माई , राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली 1993 , पृ . 95 ।*
17. *गीतांजलि श्री : माई , राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली 1993 , पृ . 138 ।*
18. *अरविन्द जैन : औरत–अस्तित्व और अस्मिता , 2001, पृ . 69–70 ।*
19. *अरविन्द जैन : औरत – अस्तित्व और अस्मिता , सारांश प्रकाशन , दिल्ली 2001 , पृ . 109 ।*
20. *जया जादवानी : तत्वमसि वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली, 2000 , पृ . 15 ।*
21. *प्रभा खेतान : छिन्नमस्ता , राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली 1993 , पृ . 222 ।*